ISSN: 2249-894X IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) VOLUME - 6 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2017

REVIEW OF RESEARCH

गाँधी, आम्बेडकर, टेगोर और हिंदी

भागिरथ चौधरी
हिन्दी विभाग,एम0एम0टी0एम0 कॉलेज,दरभंगा

सारांशः

स्तालिन ने एक बार कहा था, ''भाषा एक माध्यम है, औजार है जिसके जरिए एक–दूसरे का विचार विनिमय होता है। वहीं डा. आम्बेडकर ने इससे एक कदम आगे बढ़कर कहा था, '' अगर आपके पास भाषा है तो आपके पास सांस्कृतिक विरासत भी होती है, जिसका अपना अतीत और भविष्य होता है।'' चूँकि भाषा से ही राष्ट्रीयता की भावना का विकास होता है, इसलिए उन्होंने बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही थी। उनके विचार में आज वक्त का सबसे बड़ा तकाजा यह है कि जनता–जनार्दन के मन में एक साझी राष्ट्रीयता की भावना पैदा की जाए। मुझे अच्छा नहीं लगता, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं कि हम हिंदू या मुसलमान पहले हैं, भारतीय बाद में है। यह भावना बिल्कुल नहीं चलेगी कि पहले वे हिंदू, मुसलमान या सिंधी आदि हैं और बाद में भारतीय। मैं चाहता हूँ कि समस्त लोग पहले भी भारतीय हों और बाद में भी भारतीय हों तथा भारतीय के सिवाय कुछ भी नहीं हों।

प्रस्तावनाः

यह बात डॉ. आंबेडकर ने प्रांतों के क्षेत्र के पुनर्वितरण के संदर्भ में कही थी। सिजका हवाला हमें बाम्बे लेजिस्लेटिव असेंबली लिबेट्स (खंड 3) 4 अप्रैल, 1938 के माध्यम से मिलता है। असल में उस समय बंबई प्रेसिडेंसी का क्षेत्रफल लगभग 1223541 वर्ग मील था। इसे चार भाषाई खंडों में बाँटने का सिलसिला शुरू हो गया था। वे खंड या क्षेत्र इस तरह थे– महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक और सिंध। इन खंडों के लोग लगभग एक सौ दस वर्षो से बंबई प्रेसिडेंसी के अंग रहे और एक ही प्रशासन के अधीन एक–दूसरे से जुड़े रहे। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के विचार में 'एक भाषा एक प्रांत' का सिद्धांत इतना बड़ा था कि इसे व्यावहारिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता था।

प्रांतों के क्षेत्र के पुनर्वितरण के बारे में हिंदुओं और मुसलमानों का एक प्रतिनिधि मंडल भारतमंत्री (वायसराय) मोन्टेग्यू से 1920 के आसपास मिला था।[1]

राष्ट्रभाषा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के इतिहास और उनसे महापुरूषों के संबंधों का जब हम अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि लगभग सभी महापुरूषों का हिंदी से न केवल भावनात्मक लगाव था बल्कि उसकी अस्मिता और पहचान के बारे में ऐसे राष्ट्र पुरूष हमेशा जागरूक रहते थे।

गाँधीजी ने 1905 में भाषा और जनता के साथ उसके स्वभाव की बात कही थी। 1905 में बंगाल का विभाजन हुआ। इस तरह भाषाई आधार पर जातीय एकीकरण की समस्या प्रमुख राजनैतिक समस्या के रूप में सारे भारत के सामने आई। गाँधीजी ने गुजरात के लोगों को अपनी भाषा और इतिहास पर गर्व करना सिखाया। इसी तरह वह दूसरे लोगों को भी अपनी भाषा और जातीयता पर अभिमान करना सिखाते थे। भारत की सबसे बड़ी भाषाई जाति हिंदी प्रवेश में रहती है ऐसा रामविलास शर्मा अपने आलेखों में उल्लेख करते रहे हैं। गाँधीजी

हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। वे अधिकांश प्रान्तों में एक ही भाषा बोली जाए, ऐसी आशा करते थे जबकि आंबेडकर प्रांतीय भाषाओं को फलने–फूलने के साथ हिंदी को राष्ट्र की भाषा के रूप में देखते थे।

मार्च 1918 में गाँधीजी ने कहाः '' आज भी हिंदी से स्पर्धा करनेवाली कोई दूसरी भाषा नहीं है। हिंदी–उर्दू का झगड़ा छोड़ने से राष्ट्रीय भाषा का सवाल सरल हो जाता है। अंग्रेजी भाषा का मोह दूर करने के लिए इतना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा कि हमें लाजिम है कि हम हिंदी–उर्दू का झगड़ा न उठाएं। लिपि की तकरार भी हमें नहीं करनी चाहिए।' उन्होंने कहा, ''एक तो जहाँ हिंदी मातृभाषा है, वहाँ उसका विकास करें। दूसरे, जहाँ हिंदी नहीं बोली जाती, वहाँ उसका प्रचार करें। तीसरे, देवनागरी लिपि का प्रचार किया जाए। इस दृष्टि से बांग्ला भाषा के अच्छे–से–अच्छे ग्रंथ देवनागरी लिपि में और हिंदी में शब्दार्थी सहित प्रकाशित किए जाए। यह हिंदी सीखने का आसान–से–आसान रास्ता है। इस कार्य को यदि मारवाड़ी, गुजराती और अन्य धनिक वर्ग तथा साक्षर वर्ग के लोग अपने हाथ में ले लें तो थोड़े समय में बहुत सुंदर कार्य हो सकता है।[2]

देखा गया है कि हिंदी भाषा की रक्षा करने में हिंदी प्रदेश के जन साधारण ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिन्हें लोग भैया कहते हैं, मेहनत–मजदूरी करने वे मुंबई, अहमदाबाद या कोलकाता जाते हैं, ऐसे अपढ़ मजदूर जब सेठ, साहूकारों तथा मालिकों के साथ अन्य से हिंदी में बातें करते हैं तो उनकी सहज भाषा न केवल अलग–अलग प्रदेशों की भाषा संस्कृति में घुल–मिल जाती है बल्कि उस घुली–मिली भाषा में जीवन का रस आने लगता है। गाँधीजी ने इस पर विस्तार से लिखा है।

गाँधीजी इस तरफ भी संकेत करते हैं कि हिंदी प्रदेश के बु0जीवियों में अंग्रेजी की जड़ मजबूती से जमी हुई थी। उनमें अंग्रेजी–प्रेम अधिक था,हिंदी–प्रेम बहुत कम। जबकि बांग्लाभाषियों ने हिंदी के प्रचार–प्रसार में विशेष सहयोग किया। उन्होंने हिंदी में पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन कर एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जिससे अन्य गैर हिंदी भाषियों को भी प्रेरणा मिली। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि उन दिनों देशभर में हिंदुस्तानी आन्दोलन चल रहा था। आवागमन के साधन का विकास हो गया था। देशप्रेमी और क्रान्तिकारी एक प्रदेश से इन राज्यों में आ–जा रहे थे। उनके बीच भाषा के आधार पर कोई मतभेद न था। वे स्वयं बातचीत के लिए सहज और सरल भाषा चाहते थे जिससे राष्ट्रीय तथा सामाजिक गतिविधियों में भाग ले सकें।[3]

उत्तर–पूर्व राज्यों में–

हिंदी के प्रचार कार्य को गति देने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान महात्मा गाँधी का ही माना जाता है। गाँधीजी के प्रयत्नों से हिंदी के प्रसार कार्य का विधिवत् प्रारंभ यद्यपि सन् 1918ई. में हुआ तथापि असम में इसका प्रारंभ बाबा राघवदास ने किया।

असम् में सन् 1934ई. के पूर्व ही भुवन चंद्र गगै ने स्वप्रेरणा से हिंदी का कार्य आरंभ किया था। स्वदेश–प्रेम, स्वदेशी–शिक्षा और स्वावलंबन ही उनके आदर्श थे। इस प्रकार असम में पहली बार हिंदी प्रचार कार्य का अध्यापन की विधिवत् शुरूआत है। परिणामस्वरूप शिवसारग में हिंदी प्रचार का ऐसा वातावरण बना था कि केवल स्कूलों में छात्र–छात्राएँ ही नहीं, बड़े–बूढ़े तक हिंदी वर्गो में आया करते थे। वर्धा समिति का परीक्षा केन्द्र भी असम में पहली बार यहीं स्थापित हुआ था। आरंभ में केन्द्र के व्यवस्थापक विद्यालय के प्रधानाध्यापक इंद्रेश्वर सुतिया थे। बाद में यह दायित्व स्वयं भुवन चंद्र गगै ने संभाल लिया था। हिंदी प्रचार की अखिल भारतीय योजना के अनुसार जब सन् 1934ई. में बाबा राघवदास असम में पहली बार आए तो उन्होंने भी वहाँ अपना निवास बनाया था।

गाँधी की प्रेरणा से 1934 में अपनी परमहंसानंत आश्रम बरहज (उत्तर प्रदेश) से हिंदी के प्रचार कार्य हेतु बाबा राघवदास ने असम की यात्रा की।

सन् 1938ई. के अंतिम भाग में वर्धा समिति ने असम में प्रचार कार्य की देख–रेख और उसे गति प्रदान करने के लिए 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' के कार्यकर्ता यमुना प्रसाद श्रीवास्तव को संचालक बनाकर यहाँ भेजा। उन्हीं के साथ बाबा राघवदास ने एक बार पुनः असम की यात्रा की एवं प्रचार कार्य को व्यवस्थित करने की दृष्टि से ही सन् 1938ई. के 3 नवम्बर को गुवाहाटी में 'असम हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना की गई। इस समिति के प्रतिष्ठाता अध्यक्ष थे लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै। उन्हीं की अध्यक्षता में 11 दिसम्बर,1938ई. को इस समिति की पहली बैठक कॉटन कॉलेज, गुवाहाटी में हुई थी, जिसमें बाबा राघवदास और यमुना प्रसाद श्रीवास्तव के अतिरिक्त रमेश चंद्र, बी.के. भंडारी, नीलमणि फुकन, आर.डी.शाही, देवकांत बरुवा जैसे व्यक्ति भी उपस्थित थे।

समिति की दूसरी बैठक में काका कालेलकर के प्रस्तावनुसार' असम हिंदी प्रचार समिति' का नाम परिवर्तित कर 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया। 'असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' प्रारंभिक वर्षो में वर्धा की समिति द्वारा नियंत्रित थ, पर सन् 1942ई. में इसे पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त हुई। लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै ने महात्मा गाँधी के आदर्शो को स्वीकार करते हुए घोषणा की, ' 'असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' गाँधीजी के आदर्शो पर चलनेवाली संस्था है।' स्वयं महात्मा गाँधी ने भी सन् 1945ई. में असम की यात्रा की राज्य सरकार ने समिति के वार्षिक अनुवर्तक के वित्तीय अनुदान में वर्ष की किसी भी भाषा तथा साहित्य से गाँधीजी को कितनी गहरी दिलचस्पी थी, यह इस बात से जाना जा सकता है कि गुजराती साहित्य परिषद् के अधिकवेशन में भाग लेने के लिए उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर को आमंत्रित किया। उस समय गाँधीजी ने लिखा था, ''उनका आगमन छोटी–मोटी बात नहीं कहीं जा सकती। वह राजनैतिक पुरुष नहीं, महाकवि हैं। उनकी जोड़ का कोई और व्यक्ति हिंदुस्तान में तो नहीं ही है। वे जैसे कवि हैं वैसे ही तत्वज्ञानी और आस्थावान व्यक्ति हैं। वे भाषाओं के तत्वों को भी अच्छी तरह से जानते हैं।''

कलकत्ते के राष्ट्रीय पुस्तकालय की सीढ़ियाँ पार करते ही प्रवेश द्वार पर स्थापित प्रिंस द्वारिकानाथ की मूर्ति इस संस्था को दिए गए उनके योगदान की स्वीकृति है। भारत में आधुनिक शिक्षा के पहले केन्द्र हिंदू कॉलेज की स्थापना में भी उनका भरपूर योगदान था, जिसका नाम बाद में प्रेसीडेंसी कॉलेज कर दिया गया था। सन् 1874 में एशिया के इतिहास, कला, साहित्य व पुरातत्त्व के गवेषण के लिए सर विलियम जोन्स ने जिस एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना की थी, द्वारिकानाथ टैगोर उसके प्रथम भारतीय अध्यक्ष थे। आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, कलकत्ते का प्रसिद्ध इंडियन म्युजियम जैसे अनेक प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाओं का श्रेय इस सोसाइटी को है।

अगस्त 1846 को इंग्लैंड में ही उनका निधन हुआ। उनके ज्येष्ठ पुत्र व रवीन्द्रनाथि के पिता देवेन्द्रनाथ टैंगोर भी उन्हीं की तरह निराले व्यक्ति थे।

रवींन्द्रनाथ टैगोर अपने पिता और माँ शारदा देवी की चौदहवीं संतान थे। अपने बाबा और पिता की ही भांति रवीन्द्रनाथ टैगोर का व्यक्तित्व भी असाधारण व अद्वितीय था। किशोरावस्था में ही उनके अंदर साहित्यिक क्षमता का विकास प्रारंभ हो गया था।

1915 में गाँधी की पहली बार टैगोर से शांति निकेतन में ही भेंट हुई थी, जब वे दक्षिण अफ्रीका में अपना संग्राम जीतकर लौटे थे। वे दक्षिण अफ्रीका में अपना स्कूल और फीनिक्स कॉलोनी भंग कर चुके थे तथा एंड्रूज के सुझाव पर उन्होंने बच्चों को शांति निकेतन भेज दिया था। वे शांति निकेतन में उन बच्चों से मिलने आए थे तब टैगोर से पहली बार मिले। दोनों ने एक–दूसरे को गहराई तक प्रभावित किया।

गाँधीजी ने दलित अफ्रीका में गोखले के स्वागत की जैसी तैयारी की थी, कुछ–कुछ वैसी ही तैयारी वह गुजरात में रवीन्द्रनाथजी के स्वागत की कर रहे थे। उन्होंने गुजरातियों से कहा, –– मेरी कामना है कि गुजरात के लोग उन्हें उचित सम्मान दें। हम रास्तों को अलंकृत करें तो उस पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव न होकर पूर्व की सभ्यता का प्रभाव होना चाहिए।'' फिर रवीन्द्रनाथ के कला–प्रेम का स्मरण करते हुए गाँधीजी ने लिखा, ''वे अच्छे कवि होने के साथ ही चित्रकला और संगीत के भी पारखी है। इसलिए हम उनके प्रति अपना जो भाव प्रकट करना चाहें, वह शांतिमय, कलापूर्ण और सब प्रकार के आंडबरों, भावावेश से रहित एवं शुद्ध होना चाहिए।''

अहमदाबाद में जिस तरह उनका स्वागत हुआ उसके लिए गुजरात के लोगों को धन्यवाद देना चाहिए। रवींद्रनाथ ने कलकत्ते को लक्ष्य करके पूंजीवादी सभ्यता की आलोचना की थी। अहमदाबाद भी पूंजीवादी उद्योग–धंधों का बड़ा केन्द्र था। गाँधीजी ने कहा, ''उन्होंने आधुनिक सभ्यता की उपज के रूप में कलकत्ते का जो उल्लेख किया वह उनकी सहज शिष्टता और विजयशीलता का सुंदर नमूना है। गुजरात में गाँधीजी तथा उनके अगुआई न गुजराती में बोले होंगे और न ही रवीन्द्रनाथजी ने बंगाली में कुछ कहा होगा।''

1925 में गाँधी फिर शांति निकेतन आए थे तथा टैगोर के समक्ष उन्होंने अपना यह मत फिर दोहराया कि स्वराज का पथ चरखा व खादी से ही निकलेगा।

गाँधीजी को समकालीन गुजराती साहित्य की प्रगति से संतोष नहीं था। उन्होंने कला की कसौटी पर साहित्य को परखने पर जोर दिया, ''यदि मैं किसी साहित्यकार की रचना से उकता जाता हूँ तो इसमें मेरी बुद्धि का दोष नहीं है। दोष उसकी कला का है। शक्तिवान साहित्यकार को अपनी कला को कम से कम इतना विकसित तो करना ही चाहिए कि पाठक उसे पढ़ने में लीन हो जाए।

यह बात इतिहास में बखूबी दर्ज है कि बंग–भंग के समय जब स्वदेशी का जोश उमड़ रहा था, तब बंगाल में बांग्ला के जरिए शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया। राष्ट्रीय पाठशाला की स्थापना हुई पर सब बेकार गया। इसका अर्थ यह कि बंगाल के बुद्धिजीवियों पर अंग्रेजी का प्रभाव बहुत ज्यादा था। बंगाल में शिक्षित वर्ग को अंग्रेजी से बड़ा मोह रहा। इसी तरह से बंगाल का नवजागरण भी अंग्रेजी भाषा और साहित्य से प्रभावित था। रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महान लेखक उसी की देन हैं। यहाँ गाँधीजी इस बात पर खंडन करते हुए कहते हैं, ''यह कहा गया है कि बांग्ला साहित्य ने जो प्रगति की है, उसका कारण बंगालियों का अंग्रेजी भाषा और साहित्य पर अधिकार है लेकिन तथ्य इस तर्क के विरूद्ध है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की चमत्कारिक बांगला अंग्रेजी की ऋणी नहीं है। उनके भाषा चमत्कार के पीछे उनका स्वभाषा विषयक अभियान है। 'गीतांजलि' पहले बांग्ला भाषा में ही लिखी गई थी। जब गाँधीजी हिंदी या हिंदुस्तानी शब्द का प्रयोग भाषा के लिए करते हैं, तब उनका आशय भारत की समस्त भाषाओं से नहीं होता, वरन् भारत की एक भाषा से होता है। भारत की सभी भाषाएं हिंदुस्तानी नहीं हैं। हिंदुस्तानी विशेष भाषा है। इसी को गाँधीजी राष्ट्रभाषा कहते थे। उन्होंने लिखा भी है, '' मेरा यह आग्रह पहले से था कि हमें या तो मातृभाषा में बोलना चाहिए या राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी में सच कहा जाए तो गांधी, आंबेडकर और रवींद्रनाथ भाषा के प्रति बहुत सजग रहते थे। हालांकि अंग्रेजी से उनका कोई बैर नहीं था। वे अंग्रेजी में भी पढ़ते–लिखते थे, पर देशवासियों को परस्पर संवाद के लिए हिंदी भाषा के महत्त्व को बताते थे वे जहाँ भी रहे, वहीं उन्होंने राष्ट्रभाषा के महत्त्व की बात की। लोगों को अपनी भाषा का महत्त्व बताया। उन्हें जाग्रत किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो 14 अगस्त, 1931 को आंबेडकर की अन्य साथियों के साथ बंबई स्थित मणि भवन में गाँधीजी से मुलाकात हुई। संभवतः यह उनकी पहली मुलाकात थी। दूसरी मुलाकात अगस्त 1932 को पृथक निर्वाचन मंडल के विषय पर लंदन में आयोजित दूसरे गोलमेज सम्मेलन में हुई। हालांकि इसे मुलाकात कम और मुठभेड़ अधिक कहा जाता है।

28 सितम्बर, 1931 को गाँधीजी के पुत्र देवदास गाँधी द्वारा डॉ. आंबेडकर और गाँधी के मध्य सरोजिनी नायडू के लंदन के निवास पर मुलाकात हुई क्योंकि सरोजिनी नायडू तथा मालवीय आदि गाँधीजी के साथ लंदन गए थे। जो बातें सम्मेलन के स्थान यानी जेम्स महल में नहीं हो सकती थी, उसके लिए शाम को अलग से इसका प्रबंध किया गया था।

19 अक्तूबर, 1932 को सावंतवादी में एक मुकदमे की पैरवी के लिए जाते हुए आंबेडकर ने गाँधी से यरवदा में मुलाकात की। इसके बाद आंबेडकर 24 सितंबर, 1932 को पुनः गाँधीजी से यरवदा जेल में पूना पैक्ट के बारे में मिले। इसके बावजूद वे गाँधीजी द्वारा देश को स्वाधीन कराने के लिए किए जा रहे प्रयास के लिए श्रद्धा व सराहन का भाव रखते थे। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेमसे मैकडोनाल्ड द्वारा दिए गए 'कम्यूनल अवार्ड' के विरोध में जब गाँधीजी ने 20 सितंबर, 1932 को जेल में आमरण अनशन की घोषणा की, तो टैगोर ने उसका अखंडता के लिए अनमोल जीवन की बलि चढ़ाना सर्वथा उचित नहीं है।'' वे 24 सितंबर को गाँधी से मिलने यरवदा जेल के लिए चल पड़े तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा गाँधीजी की माँग मान लेने के कारण 26 सितंबर को टैगोर की उपस्थिति में ही गाँधीजी ने अपना अनशन तोड़ा और अनशन तोड़ने से पूर्व टैगोर ने 'गीतांजलि' का एक भजन बांग्ला में गाया।

संभवतः यह देश की दो महान शख्सियतों की अतिम मुलाकात थी। जाहिर है इन मुलाकातों में उनके बीच बातचीत का माध्यम हिंदी भाषा ही रहा होगा। देखा जाए तो मराठी भाषी होने के बावजूद आंबेडकर को अंग्रेजी के साथ हिंदी का भी व्यावहारिक ज्ञान था। 15 अगस्त, 1936 को उन्होंने स्वतंत्र मजदूर पार्टी बनाई जिसे वे 'कामगारों की पार्टी' कहा करते थे। 17 फरवरी, 1937 को जब बंबई विधान सभा के चुनाव हुए तो आंबेडकर सहित कनिष्ठ सदन में 14 और उच्च सदन में 2 सदस्यों का चयन हुआ था। चूँकि बंबई के कारखानों में पूरे देश से मजदूर काम करने आते थे, जिसमें हिंदी भाषी बहुतायत में होते थे, इसलिए उनसे बातचीत होने के कारण वे अच्छी तरह से हिंदी बोलने लगे थे। बहुत कम लोगों को मालूम है कि आरंभिक दिनों में उन्हें संस्कृत पढ़ने नहीं दी गई थी जबकि हिंदू धर्म ग्रंथों को पढ़ना वे जरूरी समझते थे। अतः उन्होंने जर्मनी भाषा के माध्यम से संस्कृत सीखी थी। बाद के दौर में (27 जुलाई, 1942 को श्रममंत्री बनने के अवसर पर) जब वे दिल्ली आए तो उत्तरी भारत के लोगों से उनके संवाद स्थापित हुए। उन्हीं में डॉ. सोहनलाल शास्त्री भी थे, जिनकी मदद से डॉ. आंबेडकर ने न सिर्फ हिंदी बल्कि पुनः संस्कृत का ज्ञान भी प्राप्त किया।

1940 की फरवरी में गाँधीजी कस्तूरबा के साथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन आए थे और तब टैगोर ने गाँधीजी से 'विश्वभारती' को अपनी छत्रछाया में लेने का आग्रह किया था। हमेशा की तरह गाँधीजी ने बहुत विनम्रता से कहा था कि ''इसे तो प्रभु का संरक्षण मिलता है, क्योंकि यह एक निष्ठावान आत्मा की सृष्टि है। जहाँ तक आर्थिक पक्ष की बात है, गुरुदेव को उसके भविष्य की सभी चिंताओं से मुक्त करना हमारा कर्त्तव्य है।'' गाँधीजी की टैगोर से यह अंतिम भेंट थी। इस भेंट में दिए गए वचन को उन्होंने पूरा किया। उनकी मृत्यु के पश्चात् स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय सरकार ने राष्ट्र द्वारा मान्य विश्वविद्यालय के रूप में ''विश्वभारती'' के संचालन का संपूर्ण आर्थिक दायित्व अपने ऊपर ले लिया। जवाहरलाल नेहरू ने इसका आचार्य पद ग्रहण किया, जो सर्वथा उचित था, क्योंकि उनके व्यक्तित्व में एक प्रकार से इन दोनों महापुरूषों के न्यूनाधिक गुणों का समावेश था। 7 अगस्त, 1941 की दोपहर में टैगोर का देहावसान हो गया। उनके निधन पर गाँधीजी ने लिखा था, ''शायद की कोई ऐसा सार्वजनिक कार्य हो, जिसपर उन्होंने अपने प्रबल व्यक्तित्व की छाप न छोड़ी हो।''

रवींद्रनाथ टैगोर के भीतर बंगाली भाषा और संस्कृति के प्रति बहुत ही अनुराग था। आरंभिक दौर में बंगाली भाषा के अलावा वे अंग्रेजी को ही स्वीकार करते थे। अंग्रेजी भाषा को स्वीकार करने का कारण उनके परिवार का 'रायल' होना भी था। हालांकि वे स्वयं अपने दादाजी द्वारिकानाथ टैगोर की अंग्रेजी सरपस्ती को पसंद नहीं करते थे। बाद के दौर में जब उनकी मुलाकात गाँधीजी से बार–बार होती गई तो हिंदी भाषा के प्रति उनके भीतर से अपनत्व जागा। दूसरा कारण 'विश्वभारती' का भी था। वह इसलिए कि 'विश्वभारती' में अध्ययन के लिए देशभर से विद्यार्थी तथा शोधार्थी आते थे जिनसे वे समय निकालकर मिलते भी थे। इनमें हिंदीभाषी बड़ी संख्या में होते थे। बाद में तो विश्वभारती विश्वविद्यालय में हिंदी विषय में पढ़ाई भी होने की शुरूआत होने लगी।

संदर्भ सूचीः–

1. आजकल, मार्च–2006
2. आजकल, अगस्त–2003
3. आजकल, अप्रैल –2002